

वर्तमान न्याय व्यवस्था का आधार धार्मिक आचार संहिता

सोहनराज कोठारी

जिला एवं सेशन न्यायाधीश (सेवा निवृत्त)

व्यक्ति की मूल-भूत भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की संपूर्ति के साधनों की सामूहिक सुरक्षा, संतुलन व विकास को गति देने हेतु सामूहिक शक्ति के रूप में “समाज” का अम्युदय हुआ और समाज ने अपने सदस्यों के हितों में सामंजस्य बिठाने के लिये नैतिकता के आधार पर आचार संहिता का निर्माण किया। नैतिकता का मूल ‘धर्म’ या ‘अध्यात्म’ है और धर्म या अध्यात्म का फूल नैतिकता है, नैतिकता विहीन धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती और धर्म विहीन नैतिकता का कोई आकार ही नहीं बन पाता। ऐसी स्थिति में समाज द्वारा संरचित एवं प्रवर्तित आचार संहिता, जिसे हम “कानून” की संज्ञा दे सकते हैं, उसका उद्गम वस्तुतः धर्म ही रहा है, इसलिये धर्माचरण के नियमोपनियम व ‘कानून’ के अनुसार समाज व्यवस्था सूत्र लगभग समान रहे हैं। दोनों व्यवस्थाओं में अंतर केवल इतना ही है कि समाज द्वारा स्थापित न्याय व्यवस्था के आधार व “कानून” की परिपालना आवश्यक तोर से समाज की बाह्य शक्ति— “प्रशासन” व्यक्ति को विवश करके करवाता है और परिपालना न करने पर व्यक्ति को दंडित किया जा सकता है, पर धर्माचरण के नियमोपनियम, जिन्हें “व्रत” कहा जाता है, उसकी परिपालना व्यक्ति को स्वेच्छा से, अपने आत्मानुशासन से प्रेरित होकर ही करनी होती है व उसमें दबाव, भय या प्रताड़ना को कोई स्थान नहीं है। समाज के अधिकांश व्यक्तियों के विवेक एवं अंतर-भावना इतने जागृत नहीं होते कि वे स्वेच्छा से अपने हितों की रक्षा में दूसरों के हितों पर उतना ही ध्यान रख सकें, अतः व्यक्ति के स्वयं के हितों की रक्षा के प्रयास में दूसरों के हितों का अतिक्रमण न हो, इस हेतु प्रशासन के एक विशिष्ट अंग “न्याय व्यवस्था” की प्रस्थापना हुई। इसके अंतर्गत समाज की सामूहिक आचार संहिता “कानून” की परिपालना न करने वालों को दंडित एवं प्रताड़ित करने का प्रावधान किया गया ताकि समाज व्यवस्था संतुलित एवं सुचारुरूप से रह सके एवं समाज का प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तित्व, संपत्ति, भावनाओं व वृत्तियों को सुरक्षित रखकर अन्य लोगों के साथ सामंजस्य पूर्वक रह सके व समाज में शांति व सुख बना रहे।

भारत में अनेक धर्मसंस्थाएँ हैं व उन्होंने अपने अलग-अलग धर्माचरण के नियमोपनियम बना रखे हैं; हालांकि सबका आधार अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि ही हैं, पर उन सबका विवेचन करना इस निबंध में संभव नहीं है। इस निबंध में मैं केवल जैन धर्म द्वारा प्रणीत आचार संहिता एवं कानून की धाराओं का समानांतर अध्ययन कर यह बताने का प्रयास करूंगा कि उनमें अद्भुत एकरूपता एवं साम्य है व हर स्थिति में वे एक दूसरे के पूरक अवश्य हैं। जैन धर्माचरण का वर्तमान स्वरूप भगवान महावीर की अनुभूत एवं शाश्वत सत्य से प्रेरित वाणी है, जो विगत पच्चीस सौ वर्षों से जन-चेतना को जागृत करती रही है। जैन धर्म के सभी संप्रदायों में सामाजिक लोगों की आचारसंहिता का स्वरूप एक ही प्रकार का है व सुस्थिर है। भगवान महावीर ने व्यक्ति एवं समाज के परिष्कार हेतु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के आधार पर कुछ मूलभूत नियमों का प्रणयन किया। भगवान् ने, उन लोगों के लिये जो संसार की सारी प्रवृत्तियों से विरत होकर मात्र आत्मलक्षी बनाना चाहते हों, “अनागार धर्म” का विधान किया, जिसमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह की मन, वचन व शरीर से सर्वांग परिपालना करने का निर्देश दिया गया

पर यह धर्म सारे समाज के लिये न तो उपयोगी है और न प्रासंगिक ही, अतः उसकी यहाँ चर्चा करना आवश्यक नहीं है। भगवान महावीर ने उन लोगों के लिये, जो गृहस्थ या समाज में रहकर, अपने जीविकोपार्जन करते हो, व सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हों, 'आगार धर्म' का विधान किया, जिसमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का लघुरूप में या आंशिक परिपालना का निर्देश दिया। 'अनागार धर्म' का आधार "महाव्रत" व आगार धर्म का आधार "अणुव्रत" कहलाया। इस निबंध का विषय सामाजिक जीवन से संबंधित होने के कारण, हमारी सारी चर्चा का विषय "अणुव्रत" होगा। भगवान महावीर के गृहस्थ अनुयायी जो उनकी वाणी का श्रवण करके, अपने जीवन को कारक या सफल बनाते थे, "श्रावक" कहलाते थे, और "अणुव्रत" का विधान श्रावक जीवन की ही आचार संहिता है। न्याय व्यवस्था में सामाजिक लोगों से सुनागरिक बनने की अपेक्षा की जाती है और नागरिकता को विकृत करने या भ्रष्ट करने की प्रवृत्तियों को अपराध माना जाता है और इसी आधार पर दंड व्यवस्था की संरचना की गई है। दंड व्यवस्था का विशद एवं निश्चित आकार "भारतीय दंड संहिता" में सन्निहित है एवं व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकारों की रक्षा का विशद विवेचन "भारतीय संविदा अधिनियम" आदि व्यवहार प्रक्रियाओं में सन्निहित है। किसी को अपराधी ठहराने या संविदा की वैधता या उसकी परिपालना का निर्देश देने के पूर्व प्रमाण जुटाये जाने की सारी प्रक्रिया "भारतीय साक्ष्य अधिनियम" में समाविष्ट की गई है। "भारतीय दण्ड संहिता", "संविदा अधिनियम", "साक्ष्य अधिनियम" का इस देश की न्याय व्यवस्था में गत दो शताब्दियों से निरंतर प्रयोग किया जाता रहा है और समय की दीर्घ अवधि व परिवर्तित परिस्थितियों के उपरान्त भी, इन संविदाओं में अब तक कोई सारभूत परिवर्तन या संशोधन नहीं हुआ है, जिससे लगता है कि इनमें उल्लेखित आचार संहिता के प्रावधानों का स्थायी महत्व है। जैन धर्म में सामाजिक जीवन में रत "श्रावक" की आचार संहिता एवं इन अधिनियमों व संहिताओं में वर्णित आचार संहिता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ऐसा स्पष्ट विदित होता है, कि दोनों में अपूर्व साम्य व एकल्यता है जो निम्नलिखित सारणों से उजागर हो सकती है :

सारणी १. जैन आचार एवं दण्ड-संहिता

श्रावक के व्रत व अतिचार

दंड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध

१. प्रथम अहिंसा अणुव्रत

(स्थूल प्राणातिपात का त्याग)

ए—व्रत

शरीर में पोड़ाकारी, अपराधी तथा सापेक्ष निरपराधी के सिवाय शेष, द्वीन्द्रिय आदि चलते-फिरते जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा करने का त्याग,

बी—अतिचार

१. जीवों को बंधन में लेना,
२. जीवों का वध करना,
३. जीवों के अंग उपांग का छेदन भेदन करना,
४. जीवों पर अधिभार लादना,
५. अपने आश्रित जीवों को आहार पानी से वंचित रखना,

१. किसी व्यक्ति का सदोष अपराध या परिरोध करना (धारा ३४१ से ३४८)

२. अभिवास पहुँचाना (धारा ५०६, ५०७)

३. परिरोध के लिये व्ययहरण या अपहरण (धारा ३६३ से ३६५)

४. सोद्देश्य हत्या या मानव वध (धारा ३०२-३०४)

५. आत्म हत्या या हत्या का प्रयास (धारा ३०९-३०७),

६. गर्भपात कारित, करना या भ्रूण हत्या (धारा ३१२-३१८),

७. स्वेच्छा से तीक्ष्ण या मोटे हथियार से साधारण या गंभीर चोट कारित, करना या अंगोपांग का छेदन करना (धारा ३२३ से ३२६, २३७ से ३३८),

८. हमला या अपराधिक बल प्रयोग करना (धारा ३५२ से ३५८),
९. जन शांतिभंग करना—(दंगा, बगं संघर्ष, विधि विरुद्ध जमाव आदि) (धारा १४३-१५०),
१०. रिष्टी कारित करना (धारा ४२७-४४०)
११. विधि विरुद्ध अनिवार्य श्रम (धारा ३७४),
१२. दास के रूप में किसी व्यक्ति को खरीदना या व्यय हरण (धारा ३७०-७१) ।

२. द्वितीय सत्य अणुव्रत

(स्थूल मृषावाद का त्याग)

ए—व्रत

१. कन्या के विषय में असत्य भाषण का त्याग,
२. पशु के विषय में असत्य भाषण का त्याग,
३. भूमि के विषय में असत्य भाषण का त्याग,
४. धरोहर दबाना या उस विषय में असत्य भाषण का त्याग,
५. असत्य साक्षी का त्याग ।

बी—अविचार

१. बिना विचार किये किसी पर मिथ्या आरोप लगाना,
२. एकान्त में मन्त्रणा करते हुए व्यक्तियों पर मिथ्या आरोप लगाना,
३. विश्वास करने वाले स्त्री या मित्र आदि की गुप्त मन्त्रणा प्रकाशित करना,
४. बिना विचारे या अनुपयोग से दूसरों को असत्य उपदेश देना,
५. कूट लेख की रचना करना ।

३. तृतीय अर्चौर्य अणुव्रत

(स्थूल अदत्तादान का त्याग)

ए—व्रत

१. खात खनना,
२. गाँठ खोल कर चीज निकालना,

१. मिथ्या घोषणा, मिथ्या प्रमाणपत्र, साक्ष्य विलोपन, मिथ्या सूचना, मिथ्या दावा, मिथ्या आरोप (धारा १९७-२१२),
२. न्यायिक कार्यवाही में मिथ्या साक्ष्य देना और गढ़ना (धारा १९३-१९६),
३. कूट रचना या मिथ्या लेखा करण (लेख्य पत्र, मुद्रा, पट्टा आदि का) (धारा ४७५-४७७),
४. छल कपट (धारा ४१७-२४)
५. न्यास भंग (धारा ४०६-४०९),
६. मानहानि (धारा ५००-५०२),
७. किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वास का अपमान (धारा २९५-२९८),
८. जंगम सम्पत्ति या अन्य सम्पत्ति का दुविनियोग (धारा ४०३ से ४०५),
९. अपराधी या लुटेरे, डाकू को प्रभय देना (धारा २१२ से २१६),

१. चोरी (धारा ३७९ से ३८२),
२. अतिचार, गृह अतिचार, प्रच्छन्न गृह अतिचार, गृह भेदन, रात्रि गृहभेदन (धारा ४४७ से ४६२),

३. जेब काटना,
४. दूसरों के ताले को बिना स्वामी की आज्ञा के तोड़ना या खोलना,
५. मार्ग में चलते हुए को लूटना,
६. स्वामी का पता होते हुए किसी की पड़ी वस्तु लेने का त्याग ।

बी-अतिचार

१. चोर की चुराई वस्तु को लेना,
२. चोर को चोरी के लिये प्रेरणा देना, उपकरण देना या बेचना या चोर की सहायता करना,
३. राज्य निषिद्ध वस्तु का व्यापार या उस हेतु दूसरे राज्य में प्रवेश,
४. कूट तोल माप,
५. अपमिश्रण—सरस में नीरस या असली में नकली वस्तु का मिश्रण ।

४. चतुर्थ ब्रह्मचर्य अणुव्रत

ए-व्रत

१. स्व-स्त्री के साथ संभोग की मर्यादा,
२. परस्त्री, वेश्या, तिर्यच, देवी, देवता के साथ संभोग का त्याग ।

बी-अतिचार

१. कुछ समय के लिये अधीन की हुई स्त्री से गमन करना या अल्प वय वाली अपनी पत्नी से गमन करना या उस हेतु आलाप संलाप करना,
२. विवाहित पत्नी के सिवाय शेष स्त्रियों—वेश्या, अनाथ कन्या, विधवा, कुलबधु, परस्त्री आदि अपरिगृहीता के साथ आलाप संलाप करना या मैथुन करना,
३. अप्राकृतिक मैथुन,
४. पराये विवाह कराना,
५. काम भोग तीव्र अभिलाषा से करना ।

३. उद्घापन (धारा ४८४ से ३८९),
४. लूट या लूट का प्रयास (धारा ३९२ से ३९४),
५. डकैती या उसका प्रयास (धारा ३९२ से ३९७),
६. चुराई हुई सम्पत्ति को जानते हुए प्राप्त करना (धारा ४११ से ४१४),
७. छोटे बांट या माप का कपट पूर्वक प्रयोग करना या बनाना (धारा २६४ से २६७),
८. विक्रय के लिये आयातित तेल, खाद्य, औषध, भेषज, या पेय का अपमिश्रण (धारा २७२ से २७६),
९. लोक-जल-स्रोत या जलाशय का जल कलुषित करना या वायु मण्डल को अपायकर बनाना (धारा २७७ से २७८) ।

विशेष—भारतीय खाद्य अपमिश्रण अधिनियम में विशेष कठोर दण्ड देने का प्रावधान है ।

१. किसी स्त्री को विवाह करने के लिये विवश करने या भ्रष्ट करने के लिये अपहरण (धारा ३६६),
२. अल्प वयस्क लड़की का उपायन (३६७),
३. विदेश से लड़कियों का आयात निर्यात (३६६क),
४. बलात्कार
ए—१२ वर्ष से कम आयु की अपनी पत्नी के साथ संयोग,
बी—अन्य किसी स्त्री के साथ उसकी बिना इच्छा व सहमति के संभोग (धारा ३७६),
५. प्रकृतिविरुद्ध मैथुन (धारा ३७७),
६. प्रवचना पूर्वक विवाह (धारा ४७१),
७. पति या पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह (धारा ४९४),
८. जार कर्म या व्यभिचार (धारा ४९७, ४९८),
९. स्त्री की लज्जा भंग करने के लिये बल प्रयोग (धारा ३५४),

१०. स्त्री की लज्जा का अनादर करने के आशय से अपशब्द कहना या अंग विक्षेप करना (धारा ५०९),
११. अश्लील पुस्तकों व वस्तुओं का क्रय या अश्लील संगान (धारा २९२ से २९४) ।

५. पाँचवा अपरिग्रह अनुव्रत

ए-व्रत

क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य-सुवर्ण, द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य, गृह सामग्री आदि नव प्रकार के परिग्रह की मर्यादा करना ।

बी-अतिचार

क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य, गृह सामग्री की मर्यादा का अतिक्रमण ।

इस दिशा में कानून में अभी कोई प्रावधान नहीं है “भू सोलिंग अधिनियम से भूमि की सीमा की जा रही है—कालांतर में शहरी सम्पत्ति की सीमा करने का कानूनी प्रावधान करने की चर्चा है ।

१. लोक सेवक द्वारा भ्रष्ट व अवैध साधनों से परितोष प्राप्त करना या लेना अपराध है (धारा १६१ से १७१),
२. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम में इसके लिये कठोर दण्ड का प्रावधान है,

व्रत परिपालन या अतिचार सेवन की सीमा

श्रावक अपने व्रतों का पालन मन, वचन व शरीर से करता है व कराने तक, व्रत पालन की सीमा है। अतिचारों के सेवन से भी वह करने-कराने की सीमा तक बचता है। अनुमोदन करना उसके लिये अपवाद स्वरूप है व उससे व्रत भंग या अतिचार सेवन नहीं होता ।

अपराध की सीमा

अपराध ही दण्डनीय नहीं है पर उसकी प्रेरणा आदि भी दण्डनीय है, जिसके प्रावधान इस प्रकार है :

१. दुष्प्रेरणा (धारा १०९ से ११७),
२. अपराध करने की परिकल्पना को छिपाना (धारा ११८ से १२०),
३. अपराध करने की सद्भावना (धारा ३४),
४. अपराध करने का सह-उद्देश्य (धारा ४२),
५. षड्यंत्र (धारा १२० बी, १२१ से १२०) ।

इस प्रसंग में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जिस तरह धर्माचरण की प्रेरणा का मूल आधार आत्मा की पवित्रता व नैतिक शक्ति में विश्वास है, उसी तरह अपराधों की दण्ड व्यवस्था का आधार भी क्रमशः उसी दिशा में गतिमान हुआ है। धर्माचरण में तो प्रारम्भ से ही दुराचरणों को छोड़ने की प्रेरणा दी गई है, पर उसके परिपालन के पीछे बाह्य शक्ति-प्रयोग की कमी होने से सारे समाज पर उसका तत्काल प्रभाव नहीं पड़ पाया। अतः न्याय प्रक्रिया में दण्ड व्यवस्था के जरिये सदाचरणों की संहिता के उल्लंघन करने वाले कार्यों को प्रशासन के जरिये दण्डनीय बनाया गया। प्रारम्भ में चोरी करने वाले के हाथ काट दिये जाते थे, कृदृष्टि का दण्ड आँख फोड़ना था, अंगोपांग छेदन करने वाले को वैसा ही दण्ड दिया जाता, हत्या या मानव बध करने वाले को खुले आम शूली, फाँसी या बोटी बोटी काट कर कुत्तों, कागों से नुचवाना, आदि थे, पर ज्यों ज्यों सभ्यता व संस्कृति का विकास हुआ व सामुहिक कहणा व समता का विस्तार हुआ, त्यों त्यों इस प्रकार के निर्मम एवं दुष्टतापूर्ण दण्डों को समाप्त कर दिया गया। वर्तमान सारी दण्ड व्यवस्था मात्र सीमित कारावास या अर्धदण्ड पर ही आधारित है ताकि उसमें अपराधी की भावना का मूल्यांकन हो सके व उसके हृदय परिवर्तन या सुधार का अवकाश रहे। इतना ही नहीं अब तो कारावास के बन्द आवास-स्थल अनेक स्थानों पर

खुले कर दिये गये हैं व कारावास में अपराधी को शिक्षित करने, उसके लिए रोजगार जुटाने व उसके सदाचरण को प्रोत्साहित करने के विविध उपक्रम प्रशासन द्वारा चलाये जा रहे हैं। सद्ब्यवहार व सदाचरण के आधार पर कारावास की अवधि घटाई भी जा सकती है। भारतीय परिवीक्षा अधिनियम की धारा ३, ४, ६ के अनुसार व दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा ३६० के अनुसार यह अनिवार्य कर दिया गया है कि आजीवन कारावास व मृत्यु दण्ड से दण्डित अपराधों के सिवाय सभी प्रथम अपराधों में यदि अपराधी पश्चाताप करे, तो उसे मात्र प्रताड़ना देकर या किसी सम्झौत व्यक्ति के उसके सदाचरण के लिए प्रतिबद्ध होने पर उसे छोड़ दिया जाये व सुधारने का अवसर दिया जाये। जघन्य से जघन्य हत्या में भी कई देशों में मृत्यु दण्ड को समाप्त कर दिया गया है, और हमारे देश में भी यह दण्ड मात्र अपवाद स्वरूप ही रह गया है। मेरे विचार में ऐसा लगता है कि धीरे धीरे न्याय प्रक्रिया व दण्ड व्यवस्था भी विशुद्ध धर्माचरण की ओर गतिशील है। यहाँ यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि प्रारम्भ में जहाँ धर्माचरण के नियम प्राणीमात्र के प्रति करुणाभाव से प्रेरित थे, वहाँ कानून की परिपालना केवल मनुष्य जाति तक सीमित थी, पर अब कानून भी प्राणीमात्र के प्रति दया से प्रेरित हो रहा है। “भारतीय पशु क्रूरता निवारण अधिनियम” “वन्य जीव संरक्षण अधिनियम” “वृक्षावली संरक्षण अधिनियम”, “गो वध अधिनियम” आदि कानून इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि न्याय व्यवस्था समूचे प्राणि जगत के कल्याण के प्रति निरन्तर सजग बन रही है। कहीं कहीं तो वर्तमान न्याय व्यवस्था के नियम धर्माचरण के सिद्धान्तों से भी आगे चरण बढ़ा रहे हैं। श्रावक की आचारसंहिता में एक से अधिक विवाह करने, लज्जाभंग का प्रयास ये करने, अश्लील साहित्य या वस्तु का प्रदर्शन करने, विदेश से लड़कियों का आयात-निर्यात करने, लोक जलाशय या वायुमण्डल को प्रदूषित करने आदि अनेक कार्यकलापों को पाप की कोटि में नहीं लिया गया है, पर वर्तमान न्याय व्यवस्था में इन सबको अपराध की कोटि में लिया गया है। हो सकता है कि श्रावक की आचार संहिता का निर्माण करते समय ये कार्य किये जाते ही नहीं हों या उनकी व्यापकता न बढ़ी हो। चाहे जो हो, यह निश्चित है कि वर्तमान न्याय व्यवस्था धर्माचरण की दिशा में प्रगति करने के लिये निरन्तर गतिशील व जागरूक है।

इसी क्रम में यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि मात्र दण्ड व्यवस्था ही नहीं, बल्कि व्यवहार प्रक्रिया में भी धर्माचरण के सिद्धान्तों का व्यापक प्रभाव रहा है। न्याय व्यवस्था में किसी को दोषी ठहराने के लिये पूर्व व्यक्ति के अभिकथनों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते हैं व ऐसे अभिकथन न्यायालय के समक्ष सशपथ दिये जाते हैं। शपथ की शब्दावली, जो विधि सम्मत है, इस प्रकार है :

“मैं जो कुछ कहूँगा, सत्य कहूँगा, सत्य के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा, ईश्वर मेरी सहायता करे”

मात्र इस शब्दावली से ही स्पष्ट हो जाता है कि न्याय व्यवस्था ने धर्म की तरह ही सत्य भाषण को पूरा महत्व दिया है, व असत्य कथन को निरर्थक माना है व साथ में यह भी माना है कि सत्य भाषण करने वाले का ईश्वर सहायक होता है। मेरे विचार में मात्र यह एक तथ्य ही इस बात को उजागर करने के लिए पर्याप्त है कि न्याय व्यवस्था व धर्माचरण मूलतः एक है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम के सारे प्रावधान केवल सत्य-भाषण की महत्ता व प्रामाणिकता का संस्पर्श किये हुये हैं। इसी प्रकार ‘संविदा अधिनियम’ के प्रावधान भी धर्माचरण के परिपार्श्व में ही परिक्रमा करते हुए प्रतीत होते हैं। धार्मिक आचार संहिता को स्वीकार करने या उसके पालन करने वाले गृहस्थ या श्रावक के लिये यह आवश्यक है कि वह शुद्ध मन से विवेकपूर्वक त्याग या व्रत का सही अर्थों में महत्व समझ कर स्वेच्छा से बिना किसी दबाव या प्रलोभन के मात्र आत्मा की सिद्धि प्राप्त करने के लक्ष्य को लेकर उसकी सम्यक् पालन या आराधना करे। इसी प्रकार समाज में दो व्यक्ति या समूह के बीच संविदा को स्वीकार करने या पालन करने वाले व्यक्ति या समूह के लिये यह आवश्यक है, कि वे स्वस्थ चित्त व व्यसक अवस्थामें संविदा स्वीकार करे व उसके लिये दोनों पक्षों की स्वतन्त्र सम्मति हो व जिसमें उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्या व्यसन, भूल का प्रयोग न हुआ हो और जिसका प्रतिफल या उद्देश्य सम्यक् व विधिसम्मत हो। मेरे विचार में धर्माचरण में जो मानसिक अनुबन्ध होता है, वही संविदा की

प्रक्रिया में व्यावहारिक अनुबन्ध का रूप ले लेता है। संविदा अधिनियम में एक ऐसा विलक्षण प्रावधान है जो चिर-कालिक सामाजिक बुराई जुआ, सट्टा या बाजी लगाने पर बड़ा कठोर प्रहार करता है और इस विषय में की गई संविदा को निष्प्रभावी व शून्य मानता है। मेरे विचार में इस अधिनियम को एक ही धारा धर्माचरण की दृष्टि से अपूर्व सामाजिक उपलब्धि है। संविदा अधिनियम के अनेक ऐसे प्रावधान हैं जो इस बात को स्पष्टता से प्रकट करते हैं कि धर्माचरण के सिद्धान्तों को व्यवहार की प्रक्रिया में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान मिला है, जितना कि उनका धर्म साधना के जगत् में स्थान है।

उपरोक्त विवेचन के प्रकाश में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान न्याय व्यवस्था व धार्मिक आचार संहिता—दोनों व्यक्ति व समाज के परिष्कार का एक ही लक्ष्य लेकर निमित्त हुए हैं, अतः दोनों में पर्याप्त मात्रा में एकरूपता है। पर जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, दोनों की परिपालना में एक महत्वपूर्ण अन्तर है। धर्म संहिता की पालना व्यक्ति स्वेच्छा से मात्र अपनी आत्मा की साक्षी के सहारे जीवन को संमुज्ज्वल बनाने के उद्देश्य से करता है, अतः व्यक्ति या समाज सुधार का यह रास्ता स्थायी होते हुये भी लम्बा व दुर्गम है, जिसमें कभी कभी फिसलने की आशंका बन सकती है। न्याय व्यवस्था में कानून की परिपालना प्रशासन की शक्ति के सहारे व्यक्ति से अनिवार्यतः कराई जाती है, अतः व्यक्ति या समाज सुधार का यह रास्ता अस्थायी होते हुये भी त्वरित फलदायक होता है पर इसमें शक्ति प्रयोग के कारण कभी कभी विद्रोह व उत्पीडन की आशंका निरन्तर बनी रहती है। सच तो यह है कि न्याय व्यवस्था व धार्मिक आचार संहिता जहाँ कई बिन्दुओं पर एक रूप हो गई हैं वहाँ अन्य बिन्दुओं पर एक दूसरे की पूरक हैं। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों में सन्तुलन बना रहे, व्यक्ति और समाज को धार्मिक आचारसंहिता के प्रति स्वेच्छा से आकृष्ट होने के लिये शिक्षा व अन्य माध्यमों के जरिये प्रोत्साहित किया जाये व समाज में व्यक्ति के सम्मान का मूल्यांकन मानवीय गुणों के आधार पर किया जाये। साथ ही जो व्यक्ति नैतिकता विहीन आचरण के लिये उद्यत हो और समाज व अन्य व्यक्तियों के हितों की उपेक्षा या अवमानना करने पर तुल्य हो व जिनका एकमात्र लक्ष्य भय और आतंक फैलाना बन गया हो, उन्हें न्याय प्रक्रिया के अनुसार दण्डित कर सुधारने के लिये विवश किया जाये। दोनों व्यवस्थाओं को बलशाली बनाया जा कर परिस्थिति के अनुरूप प्रयोग किया जाये तो मेरा निश्चित विश्वास है कि समाज में सुख और शान्ति का वातावरण अवश्य बनेगा।

अन्त में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि न्याय व्यवस्था कितनी हो सुनिश्चित व प्रभावी हो या धार्मिक आचार-संहिता कितनी हो शुद्ध व प्रामाणिक हो, जब तक उसकी परिपालना कराने वालों या करने वालों का चरित्र उज्ज्वल एवं निष्कलंक नहीं होगा, तब तक इन दोनों से किसी को लाभ नहीं हो सकता। धर्माचरण की प्रेरणा देने वाले धर्माचार्य या धर्माधिकारी का चरित्र, यदि वास्तव में किसी प्रकार के दौर्बल्य से ग्रस्त नहीं हो, तो उनसे सारा समाज स्वतः प्रेरणा पाकर सही रास्ते पर चल पड़ेगा और यदि परिपालना करने वाले अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाने को संकल्पशील है, व अभय और असंग बन कर अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं, तो समाज की प्रगति को कोई नहीं रोक सकता। इसी प्रकार न्याय व्यवस्था के संचालक या न्यायाधिकारी का चरित्र यदि उत्कृष्ट है तो न्याय व्यवस्था के सारे श्रेय तत्त्वों को वह प्रभावी बना सकेगा, और इस व्यवस्था को हर स्थिति में विशुद्ध रखने के लिये यदि समाज में साहस, संकल्प और सहयोग करने की भावना का बल है तो समाज में स्वतन्त्रता, समता एवं भ्रातृत्व का स्रोत अपने आप फूट पड़ेगा। हर अच्छी व्यवस्था अच्छे व्यक्ति के हाथों में निखर उठती है और बुरे व्यक्ति के हाथों में प्रदूषित हो जाती है। इसलिये दोनों व्यवस्थाओं को सफल बनाने की दिशा में उसको प्रभावित करने वाला मनुष्य या व्यक्ति चरित्रवान बने। यह प्राथमिक व प्रमुख अपेक्षा है। मैं धार्मिक आचार संहिता को वर्तमान न्याय व्यवस्था का आधार मानता हूँ और न्याय व्यवस्था को उस संहिता का सुफल मानता हूँ। अपेक्षा है कि आधार सन्तुष्ट और सुखद फल देने की सम्भावना वाला हो और फल सरस, सुस्वादु व स्वस्थ हो ताकि आधार का सही मूल्यांकन हो सके।

